

अनुक्रम

सम्पादकीय	04
परिप्रेक्ष्य	
1. जाति के बारे में बच्चों का नज़रिया / ऋषभ कुमार मिश्र	07
2. स्कूल की भाषा बनाम बच्चे की भाषा, बच्चों से सीखना / महेश झरबड़े	13
शिक्षणशास्त्र	
3. अर्थ / मीनू पालीवाल	18
4. कक्षा में 'कन्यादान' कविता के हिस्सों को पढ़ना / शचीन्द्र आर्य	23
5. सिर्फ मेला नहीं, विज्ञान भी : आसपास के जन मुद्दे भी शामिल / माया मौर्य	29
6. 'बुढ़िया की रोटी' कहानी का समाजशास्त्र / नंदा शर्मा	37
7. सोचने और सक्रिय होने का तरीका है विज्ञान / सुरभि चावला	44
कक्षा अनुभव	
8. कविता : भाषा सीखने का आनन्दमयी साधन / अनीता शर्मा	51
9. बच्चे और विज्ञान मेला : एक अनुभव / अलका तिवारी	57
10. कहानी और फ़िल्मों की जुगलबन्दी से मानवीय मूल्यों को सींचना / मंजु श्रीमाली	62
11. बन्द-ए-महामारी और पढ़ना लिखना सीखना / श्रीदेवी	66
12. बच्चे और उनका आत्मविश्वास / फ़ैयाज़ अहमद	70
विमर्श	
13. मातृभाषा और गणित शिक्षण / सुधीर श्रीवास्तव	74
पुस्तक चर्चा	
14. युवक! क्या तुम शिक्षक बनोगे? / अनिल सिंह	85
साक्षात्कार	
15. विशेष ज़रूरत वाले बच्चों के प्रति हमारे समाज को और अधिक शिक्षित एवं संवेदनशील होने की ज़रूरत है / शिक्षिका मीनाक्षी गौड़ के साथ दीपक कुमार राय की बातचीत	89
संवाद	
16. लम्बे अन्तराल के बाद स्कूलों का खुलना, चुनौतियाँ और आगे की दिशा	98
पाठक चश्मा	110

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का उपयोग शैक्षणिक और गैर-व्यावसायिक कार्यों के लिए किया जा सकता है।
लेकिन इसके लिए लेखक एवं प्रकाशक से अनुमति लेना एवं स्रोत का उल्लेख अनिवार्य है।

सम्पादकीय

यह पत्रिका का 12वाँ अंक है, इसमें 16 लेख हैं। मीनू पालीवाल के लेख का शीर्षक है **अर्थ**। यह लेख समझकर पढ़ना सीखने के बारे में है। कई शोधों और लेखों में कहा गया है कि पढ़ना महज़ अक्षर, मात्रा पहचान पाना, और जो लिखा है उसको हूबहू उच्चारित करना नहीं है। लेकिन कक्षाओं में आज भी अकसर यही होता है। कक्षा के बच्चों के साथ पढ़ने को लेकर किए गए काम के आधार पर लेखिका बताती हैं कि जब बच्चे 'वास्तव' में पढ़ने लगते हैं तो वे पाठ की शुरुआत से ही अर्थ निर्माण में शामिल हो जाते हैं। वे अनुमान लगाते चलते हैं और जल्द ही पूरे सन्दर्भ को समझ जाते हैं और तब वे अक्षर-दर-अक्षर नहीं, बल्कि पूरे वाक्यों को पढ़ते हैं और उनमें जुड़ाव भी देख पाते हैं।

कक्षा में 'कन्यादान' कविता के हिस्सों को पढ़ना, इस लेख में शचीन्द्र आर्य कक्षा दसवीं की कविता 'कन्यादान' पढ़ाने के अपने अनुभव का विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं कि कविता तो एक ही है, फिर भी हर बार विद्यार्थियों के साथ इसे पढ़ने पर नए अनुभव सामने आते हैं। अपने अनुभवों के आधार पर विद्यार्थी कविता के अर्थ को खोलते हैं और हर बार उसमें एक नया अर्थ जुड़ जाता है। लेख दर्शाता है कि अर्थ गढ़ने में पाठक के सन्दर्भों व उनकी धारणाओं की भूमिका होती है, अतः गढ़े हुए अर्थ बताने की बजाय बच्चों से रचना पर चर्चा करना ज़रूरी है ताकि उन्हें सोचने और नया व अपना अर्थ गढ़ने के मौक़े मिलें। लेख यह भी बताता है कि अलग-अलग पाठक एक ही पाठ की फ़र्क़ लेकिन अर्थपूर्ण समझ रख सकते हैं, और कक्षा में अलग-अलग विद्यार्थियों द्वारा इस फ़र्क़ समझ को प्रस्तुत करना पाठ की गहराई को समझने में मददगार होता है।

स्कूल की भाषा बनाम बच्चे की भाषा, बच्चों से सीखना, इस लेख में महेश झरबड़े विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के बच्चों के साथ भाषा सीखने-सिखाने के वाक्यों को रखते हैं। लेखक बताते हैं कि दो बिलकुल फ़र्क़ भाषा समुदायों के बच्चे एक दूसरे के साथ रहते हुए कुछ ही दिनों में एक दूसरे की भाषा सीख जाते हैं। भाषा सीखने-समझने की ये कोशिशें उन्हें एक दूसरे को, एक दूसरे की संस्कृति को समझने और एक दूसरे के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने का भी ज़रिया बनती हैं। वे कहते हैं कि विभिन्न भाषाभाषी बच्चों के साथ काम करते हुए ज़रूरी है कि कक्षा में खुलापन हो, उन्हें अपनी भाषा बोलने की छूट हो और साथ ही लक्षित भाषा पर काम हो। खुलापन तब आता है जब हम शिक्षक बच्चों की भाषा सीखने में दिलचस्पी लेते हैं और उनसे उनकी भाषा सीखने की कोशिश करते हैं। ऐसा करते समय शिक्षक भी समझ पाते हैं कि बच्चों को भाषा सिखाते वक़्त उन्हें खुद किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

नंदा शर्मा का लेख '**बुढ़िया की रोटी**' कहानी का समाजशास्त्र, कहानी सुनाने के बारे में है। लेखिका बच्चों के साथ 'बुढ़िया की रोटी' कहानी सुनाने के अनुभव को रखते हुए बताती हैं कि कहानी न केवल भाषा सीखने-सिखाने में महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इनके ज़रिए सामाजिक व्यवहारों और सामाजिक मूल्यों पर भी सार्थक चर्चा हो सकती है। नंदा कहानी सुनने के बाद कहानी पर किए गए प्रश्नों पर बच्चों की प्रतिक्रिया के बारे में कहती है कि बच्चे न केवल विभिन्न सामाजिक मूल्यों की समझ रखते हैं वरन् मूल्यों की टकराहट भी समझते हैं। कहानी सुनाने के दौरान बच्चे विभिन्न चरित्रों को समझते हुए उनके द्वारा किए गए कार्य को अपने तर्कों से तोलते हैं और कहानी इस तरह की तार्किक तुलना करने का एक ज़रिया बनती है।

ऋषभ कुमार मिश्र के लेख का शीर्षक है **जाति के बारे में बच्चों का नज़रिया**। यह लेख 12 से 15 साल के बच्चों के साथ जाति विषय पर हुई बातचीत पर आधारित है। जाति को लेकर लेखक उन मान्यताओं को बताते हैं जो इस उम्र तक आते-आते बच्चों में बन चुकी होती हैं। स्कूल में, कक्षाओं में शिक्षक व कई विद्यार्थी अकसर इन मान्यताओं को अपने व्यवहारों व कथनों के ज़रिए जाने-अनजाने पोषित करते रहते हैं। ऋषभ ज़ोर देते हैं कि स्कूल और कक्षा प्रक्रियाएँ ऐसी हों जिनके माध्यम से बच्चों के साथ उनकी इन मान्यताओं पर सार्थक बातचीत हो पाए और उनपर प्रश्न भी किए जाएँ। स्कूली शिक्षा का एक लक्ष्य यह भी है कि वह समाज से हर तरह के भेदभाव को हटाने में मददगार बने। लेकिन ऐसा लगता है स्कूल जातियों के बीच भेदभाव को न केवल पुनरुत्पादित कर रहे हैं बल्कि करते ही रहे हैं।

बन्द-ए-महामारी और पढ़ना-लिखना सीखना, यह लेख बच्चों में हुए लर्निंग लॉस पर आधारित है और इसकी लेखिका श्रीदेवी हैं। यह लेख खासकर छठवीं, सातवीं और आठवीं कक्षा के बच्चों के सन्दर्भ में है। लेखिका एक बैठक में शिक्षकों के साथ हुई बातचीत को साझा करती हैं। वे बताती हैं लगभग सभी शिक्षकों का कहना था कि छठवीं और सातवीं के कई बच्चे पढ़ने-लिखने से सम्बन्धित अपनी कई दक्षताएँ भूल चुके हैं। वे इस बारे में कुछ सुझाव भी रखती हैं कि इन बच्चों के साथ पढ़ने-लिखने की दक्षताओं पर उनके स्तर को ध्यान में रखते हुए कैसे काम किया जा सकता है। मसलन, जो बच्चे काफ़ी कुछ भूल चुके हैं उनके साथ सरल वाक्यों को पढ़ने-लिखने से शुरुआत करना, भाषा के साथ-साथ विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की कक्षाओं में भी उनके साथ भाषाई दक्षताओं पर काम करना, आदि।

मंजु श्रीमाली के लेख **कहानी और फ़िल्मों की जुगलबन्दी से मानवीय मूल्यों को सींचना** के केन्द्र में मानवीय मूल्य और लेखन है। लेखिका मानवीय मूल्यों पर आयोजित एक सृजनात्मक प्रदर्शनी में खुद के और बच्चों द्वारा की गई तैयारी के अनुभव रखती हैं। हर बच्चे को इस बात का उत्साह था कि वह प्रदर्शनी में भाग ले सकता है और सभी ने उसके लिए प्रयास भी किए। इन प्रयासों में बच्चों ने न केवल चयनित विषय पर अपने विचारों को प्रस्तुत करना, बल्कि आयोजन की तैयारी में अपनी और दूसरे बच्चों की भूमिका के बारे में भी सीखा। उन्हें यह एहसास भी हुआ कि वे भी इस तरह के आयोजनों में सार्थक योगदान दे सकते हैं।

अपने लेख **सिर्फ़ मेला नहीं विज्ञान भी : आसपास के जन मुद्दे भी शामिल** में, माया मौर्य स्कूल में आयोजित विज्ञान मेले के अनुभव प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने इस मेले में प्राथमिक कक्षाओं को भी शामिल किया। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चों ने अलग-अलग विषयवस्तुओं पर काम किया। इस लेख में आप बच्चों की तैयारी, लोगों के सामने अपनी बात कहने की उनकी हिचक और उससे पार पाना, अभिभावकों की बच्चों के काम को लेकर और शिक्षकों की इस कोशिश को लेकर प्रतिक्रियाएँ भी पढ़ेंगे।

अलका तिवारी का लेख **बच्चे और विज्ञान मेला : एक अनुभव** भी स्कूल द्वारा आयोजित किए गए विज्ञान मेले पर है। इस लेख में बच्चों द्वारा की गई मेले की तैयारी, उस दौरान अपने स्टॉल के लिए प्रयोग और मॉडल चुनना, आगन्तुक बच्चों व अभिभावकों से बातचीत की तैयारी, उस तैयारी के अनुभव, पूरी प्रक्रिया के दौरान पाए अवलोकनों, आदि सभी पर चर्चा है। इसके अलावा लेख में बच्चों के खुद के शब्दों में लिखे मेले के अनुभव और प्रदर्शनी देखने आए लोगों के साथ अन्तःक्रिया के अनुभव भी साझा किए गए हैं। लेखिका बताती हैं कि हालाँकि इस तरह के आयोजन वर्ष में एक बार ही होते हैं लेकिन इनकी तैयारी के दौरान बच्चे खुद से बहुत कुछ सीखते हैं, मसलन, प्रयोगों को स्वयं और बार-बार करके देखना, उनके बारे में पूछे जाने वाले प्रश्नों को सोचना, उनकी तैयारी करना, आदि।

लेख **सोचने और सक्रिय होने का तरीका है विज्ञान** की लेखिका हैं सुरभि चावला। उन्होंने विज्ञान सीखने के उद्देश्यों के मद्देनज़र विज्ञान की तीन अलग कक्षाओं के अवलोकनों का विश्लेषण किया है। लेख में दिए अवलोकन काफ़ी स्पष्टता से दर्शाते हैं कि एक अच्छी विज्ञान की कक्षा किसे कहा जाए, और क्यों? साथ ही ये अवलोकन यह भी बताते हैं कि ऐसी कक्षा, जिसमें महज़ तथ्यों को रटवा दिया जाए, अच्छी विज्ञान की कक्षा क्यों नहीं है? लेखिका कहती हैं, बच्चे सही मायने में विज्ञान सीखें इसके लिए ज़रूरी है कि उन्हें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए तथ्यों को रटवाने की बजाय अपने आसपास से जुड़ने, और जो जानकारी वे रखते हैं उसे अभिव्यक्त व बेहतर करने के पर्याप्त मौक़े दिए जाएँ।

सुधीर श्रीवास्तव का लेख **मातृभाषा और गणित शिक्षण**, गणित सीखने और इसमें मातृभाषा की अहम भूमिका पर केन्द्रित है। लेखक तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ वृत्त की अवधारणा पर बात करने के अपने अनुभव को बयाँ करते हैं। लेख दर्शाता है कि मातृभाषा सीखने-सिखाने का माध्यम बन सकती है। मातृभाषा में बातचीत बच्चों को अपने अनुभवों के बारे में सोचने, उन्हें अभिव्यक्त करने और उनपर चर्चा करने के लिए उत्साहित एवं प्रोत्साहित करती है। बच्चों का यह उत्साह आगे सीखने में मददगार होता है। लेखक कहते हैं कि गणित सीखने से भाषा का जो गहरा रिश्ता है उसे अकसर कक्षा में नज़रअन्दाज़ कर

दिया जाता है। मातृभाषा के उपयोग का अभाव बच्चों व शिक्षक के बीच की दूरी, बच्चों के गणितीय ज्ञान और समझ की नज़र अंदाज़ी, वस्तुओं के बारीक अवलोकन की जगह न होना, जैसे बिन्दु भी इस कक्षा प्रक्रिया में गुँथे दिखते हैं। लेख बच्चों को जल्दी सिखाने के प्रयासों की कमियों को भी उजागर करता है।

साक्षात्कार स्तम्भ में शिक्षिका मीनाक्षीजी से बातचीत है। वे बताती हैं कि अकसर लड़कियों को पढ़ने के लिए लम्बा समय नहीं मिल पाता, इस वजह से उनके लिए ऐसे पेशे चुनना मुश्किल होता है जिनमें पढ़ाई की अवधि लम्बी होती है। मीनाक्षीजी द्वारा शिक्षकीय पेशे को चुनने की वजह भी यही थी। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें एहसास हुआ कि समाज से जुड़ने, समाज के लिए कुछ करने की उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए इससे बेहतर कोई और पेशा नहीं हो सकता था। महिला शिक्षक होने की चुनौतियों, सीखने-सिखाने में बच्चों की क्षमता, उनके स्वभाव की समझ, शिक्षा क्यों ज़रूरी है, आदि सभी बिन्दुओं पर काफ़ी गहराई से वे अपनी बात रखती हैं।

इस बार के **संवाद** के केन्द्र में 'लर्निंग लॉस' है। विभिन्न राज्यों की शिक्षिकाओं और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सदस्यों ने इस सन्दर्भ में अपने स्कूलों के अनुभव इस मंच पर साझा किए हैं। एक लम्बे समय के बाद स्कूली शिक्षा से फिर से जुड़ने में शिक्षकों और बच्चों के सामने आ रही चुनौतियों, किए जा रहे प्रयासों, इन प्रयासों में बच्चों के सीखने की दिख रही सम्भावनाओं, अतिरिक्त प्रयास करने की ज़रूरतों, आदि पर विस्तार से चर्चा की गई है।

पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत इस बार श्याम नारायण मिश्र द्वारा लिखी गई किताब *अध्यापकीय जीवन का गुणनफल* की समीक्षा की गई है। यह समीक्षा अनिल सिंह ने की है। किताब आज़ादी के आरम्भिक दशकों में शिक्षा, स्कूल और शिक्षक की स्थिति की एक तस्वीर सामने रखती है।

पाठक चश्मा खण्ड में *पाठशाला* के लेखों के बारे में पाठकों के विचार शामिल किए गए हैं।

पाठशाला का 14वाँ अंक सामाजिक विज्ञान सीखने-सिखाने पर केन्द्रित होगा। इस अंक हेतु कक्षा में किए गए काम पर आधारित विश्लेषणपरक अनुभव तो आमंत्रित हैं ही, साथ ही सामाजिक विज्ञान को कैसे समझें, कक्षा प्रक्रियाओं के साथ-साथ स्कूल की प्रक्रियाओं में यह कैसे झलकता है, स्कूल में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की जगह कहाँ-कहाँ बनती है, जैसे विषयों पर भी लिखा जा सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 विषयों की चारदीवारी को तोड़ने की ज़रूरत को उजागर करती है। यह सुझाती है कि बुनियादी दक्षताएँ विकसित करने, मसलन, मौखिक और लिखित संवाद, तार्किक चिन्तन और समस्या समाधान, कला के प्रति रुचि और उसकी सराहना, नीतिपरक चिन्तन, समसामयिक मुद्दों का संज्ञान, उनपर विमर्श, आदि का ज़रिया सभी विषय बन सकते हैं। यह हो पाए, इसके लिए कोशिश की जानी चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य के तहत सामाजिक विज्ञान शिक्षण में क्या-क्या किया जा सकता है और यदि किया गया है तो उसके अनुभव क्या रहे हैं, इसपर भी लिखा जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान पर केन्द्रित इस अंक के लिए आप सितम्बर 2022 तक अपने लेख हमें भेज सकते हैं। आशा है कि इस बारहवें अंक में प्रस्तुत लेख पाठकों के लिए सार्थक व उपयोगी होंगे। जैसा हम कहते आए हैं, लेखों पर अपनी टिप्पणियों व प्रतिक्रियाओं को हमसे ज़रूर साझा करें। साथ ही, यदि आपको लगता है कि स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित किसी खास विषय पर इस पत्रिका के लेखों द्वारा चर्चा हो सकती है तो वह विषय भी आप सुझा सकते हैं।

इसके अलावा *पाठशाला* सभी के मनन, चिन्तन व विश्लेषण की प्रस्तुति के लिए है। आपके भी शिक्षण कार्य के दौरान कुछ अनुभव होंगे जो शिक्षा के बारे में कुछ पहलू नए ढंग से रखते हों। अतः आप भी स्कूल, कक्षा, और समाज व शिक्षा से सम्बन्धित पहलुओं पर अपने अनुभव ज़रूर लिखें और *पाठशाला* के साथ साझा करें।

सम्पादक मण्डल